ा १

व्रर्पर काव्य

केशोरी लाल गुप्त

नव प्रकाशन

भदोही • मोंठ, झाँसी

ा १

व्रर्पर काव्य

हिन्दुस्तान एकेडमी/इलाहाबाद
को सप्रेम
किशोरीलाल
१२-२-८६

किशोरी लाल गुप्त

नव प्रकाशन

डोही • मोंठ, झांसी

ती-स्मृति-ग्रंथ-माला

नी, प्रिया, सखा, सचिव, सहायक, प्रेरक, शक्ति
६५ को निशीथ में बारह बजे वे ६३ वर्ष का
की पूर्ण वय में भरापूरा परिवार परित्याग कर
। स्मृति में अपने ललित ग्रंथों का प्रकाशन इस
र रहा हूँ। उनकी आत्मा को इससे कुछ शांति
रवार को भी उनकी स्नेह-स्मृति बनी रहेगी, मुझे

किशोरी लाल गुप्त

घटखर्पर काव्य की हिन्दी गद्य में प्रथम टीका करने वाले

द्विवेदी-युगीन खड़ी बोली के समर्थ कवि

पंडित रामचरित उपाध्याय

की

पावन स्मृति में

भूमिका

विदित हो कि यह घटखर्पर काव्य घटखर्पर कवि की बनाई हुई है। उक्त कवि महाराज विक्रमादित्य देव के समय में दरबार के नवरत्नों में से एक थे। कालिदास प्रभृति महाकवि इन्हीं नवरत्नों में थे। प्राय सब कवियों ने अनेक ग्रन्थों की रचना करके संसार का बड़ा ही उपकार किया है। यह ग्रन्थ अति छोटा होने पर भी मनोहर है और कालिदास के मेघदूत की छटा रखता है। विशेष यह है कि मेघदूत नायक के तरफ से कहा गया है और यह नायिका के तरफ से तथा उसमें यमक नहीं है इसमें यमक संपूर्ण श्लोकों में है। वियोगिनी स्त्री की दशा इस ग्रन्थ से टपकती सी मालूम देती है। इसका कोई सरल संस्कृत टीका तथा भाषानुवाद नहीं देखकर मैंने प्रयत्न किया है। यदि सज्जनगण इसको अवलोकन करके तनिक भी प्रसन्न होंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल मानूंगा। मैंने इसका संपूर्ण अधिकार श्री हरिप्रसाद भगीरथ जी को अर्पण किया है, जिन्होंने अपनी गुणग्राहकता से मुद्रित करना स्वीकार किया है।

आजमगढ़ निवासी
उपाध्याय रामचरित्र शर्मा

विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शङ्कु
बेताल भट्ट घटखर्पर कालिदासः
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य

[महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न—१. धन्वन्तरि, २. क्षपणक, ३. अमर सिंह, ४. शंकु, ५. बेताल भट्ट, ६. घटखर्पर, ७ कालिदास, ८. वराह-मिहिर, ९. वररुचि ।]

"घटकर्पर—संज्ञा पुं० [सं०] विक्रम की सभा के नवरत्नों में एक कवि का नाम।"

विशेष– इनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में आता है। इनका बनाया नीतिसार नामक एक ग्रंथ मिलता है, जिसे 'घटकर्पर काव्य' भी कहते हैं। इनका छोटा सा काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है। 'यदि कोई इससे सुन्दर यमकालंकार युक्त कविता करे तो मैं फूटे घड़े के टुकड़े से उसका जल भरूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण इनका नाम घटकर्पर या घटखर्पर पड़ा है।

—हिंदी शब्द सागर, भाग ३, पृष्ठ १३७८

विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शङ्कु
बेताल भट्ट घटखर्पर कालिदासः
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य

[महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्न—१. धन्वन्तरि, २. क्षपणक, ३. अमर सिंह, ४. शंकु, ५. बेताल भट्ट, ६. घटखर्पर, ७ कालिदास, ८. वराह-मिहिर, ९. वररुचि।]

"घटकर्पर—संज्ञा पु० [सं०] विक्रम की सभा के नवरत्नों में एक कवि का नाम।"

विशेष — इनका नाम कालिदास के साथ विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में आता है। इनका बनाया नीतिसार नामक एक ग्रंथ मिलता है, जिसे 'घटकर्पर काव्य' भी कहते हैं। इनका छोटा सा काव्य यमक अलंकार से परिपूर्ण है। 'यदि कोई इससे सुन्दर यमकालंकार युक्त कविता करे तो मैं फूटे घड़े के टुकड़े से उसका जल भरूँगा' इस प्रतिज्ञा के कारण इनका नाम घटकर्पर या घटखर्पर पड़ा है।

—हिंदी शब्द सागर, भाग ३, पृष्ठ १३७८

प्राक्कथन

घटखर्पर का नाम विक्रम के नवरत्नो का उल्लेख करने वाले एक हिंदी दोहे में १६२७-२८ ई० में प्राइमरी स्कूल बिछिया की कक्षा ४ में पढते हुए पहली बार जाना । फिर कुछ ही दिनों बाद विक्रमादित्य के नवरत्नो की गणना करने वाला संस्कृत श्लोक पढा । लबेर्ट हाई स्कूल, ज्ञानपुर में पढ़ते समय कविता-कौमुदी द्वितीय भाग मे पं० रामचरित उपाध्याय के ग्रन्थों की सूची मे घटखर्पर काव्य की भाषा टीका का नामोल्लेख पाया । पर घटखर्पर काव्य के संबंध में जिज्ञासा बढ़ी, डॉ० जयशंकर त्रिपाठी के 'घटखर्पर की जीवनी' शीर्षक ललित निबंध को पढ़कर । यह निबंध त्रिपाठी जी के 'पर्वत से झाँकता चक्र नयन' नामक निबंध-संग्रह में संकलित है । यह संग्रह दीपावली १६७० ई० को प्रकाशित हुआ था और त्रिपाठी जी ने इसकी एक प्रति मुझे २७/४/७५ को भेंट की थी । यह निबंध मुझे बहुत अच्छा लगा और मैंने इसे कई बार पढा । आज यह प्राक्कथन लिखने के पूर्व, लगभग २० वर्षो बाद मैने इसे पुन मनोयोगपूर्वक पढ़ा है और इसमे वही ताजगी पाई है, जो १६७५ ई० मे पहली बार पढ़ कर पाई थी ।

१६७७ ई० में महाकुंभ के अवसर पर मैंने सपत्नीक प्रयाग मे एक मास का प्रथम कल्पवास किया । मकर संक्रांति के दिन, १४ जनवरी १६७७ को, खेमराज श्रीकृष्णदास की मेले मे लगी पुस्तकों की दूकान से घटखर्पर काव्य की एक प्रति खरीदी, जो १६१४ ई० की छपी है । संयोग से यह पं० रामचरित उपाध्याय वाली भाषा टीका निकली । मैं इस काव्य को उसी दिन मेले में पढ़ गया और इस काव्य के पद्यानुवाद की कामना मेरे मन मे जग गई ।

माघ पूर्णिमा और फाल्गुन प्रतिपदा (४ फरवरी ७७) को मैने प्रथम चार छंदों का ब्रजभाषा सवैयों मे पद्यानुवाद कर दिया । ५ फरवरी को घर आ गया और ७ तथा ८ फरवरी को संपूर्ण ग्रन्थ का खड़ी बोली एवं ब्रजी मे पद्यानुवाद कर डाला । अनुवाद करते समय उपाध्याय जी की संस्कृत मधुरा टीका एव हिंदी भाषा टीका मेरे सामने बराबर रही है ।

कवि ने जिन यमकों के लिए यह काव्य रचा था वे हिंदी पद्य या गद्य में कदापि नहीं अनूदित किए जा सकते। हिंदी अनुवाद में वह चमत्कार सुरक्षित रखना संभव नहीं, पर उसकी सरसता की रक्षा की जा सकती है, जिसकी रक्षा का मैंने यथासंभव प्रयास किया भी है। खड़ी बोली वाला अनुवाद मूल के प्राय: बहुत निकट है। ब्रजभाषा वाला अनुवाद सवैया जैसे बड़े छंद में है, अत: मूल का विस्तार स्वत: हो गया है। दोनों अनुवाद अपना अलग-अलग स्वाद रखते हैं। मैंने बाईसों सवैयों में एक ही तुक का निर्वाह किया है। यह प्रतिबंध अपने ऊपर लगाकर मैंने यमक वाले चमत्कार के अभाव की किंचित पूर्ति करनी चाही है। इस अनुवाद में ब्रजभाषा काव्य की प्रवृत्ति के अनुसार यत्र तत्र यमक स्वत आ गए हैं। यमक ब्रजभाषा में सोहते हैं और खूब सोहते हैं, खड़ी बोली काव्य में उनकी उपादेयता संदिग्ध है।

—१३-२-७७

मैं १ अप्रैल १९७७ से ११ अप्रैल ७७ तक कुल ११ दिन बम्बई में था। ९ अप्रैल ७७ को ट्रेन में किसी भले मानस ने मेरी जेब से घटखर्पर काव्य के अनुवाद की पोथी को बहुत बड़ा माल समझकर धीरे से निकाल लिया। उसको तो कुछ न मिला, मेरा बहुत कुछ चला गया। पोथी के पाकेटमार पगारिए के हाथ पड़ जाने से मन विषण्ण हो उठा। २० अप्रैल को घर वापस आया और पुन: नए सिरे से अनुवाद करने में दत्त-चित्त हुआ। पहला अनुवाद तीन दिनों में पूरा हुआ था। यह दूसरा अनुवाद चार दिनों में पूरा हुआ—

२३ अप्रैल ७७—छंद १, २, ३
२४ अप्रैल—छंद ४, ५
२५ अप्रैल—छंद ६-१४
२६ अप्रैल—छंद १५-२२

कुछ पता नहीं यह अनुवाद पहले जैसा हो सका या नहीं।

—२-५-७७

मैं संस्कृत बहुत कम जानता हूँ और घटखर्पर काव्य के बाईसों श्लोकों का गद्यानुवाद देना मैं आवश्यक समझता था। पर यह कार्य मैं स्वयं सुचारु रूप से नहीं संपादित कर सकता था। संस्कृत श्लोकों का हिंदी अनुवाद करना स्वयं में एक कला है। अत: मैंने २२ पन्नों पर हर एक पन्ने पर एक-एक श्लोक लिखकर गुरुवर अभिनव भरत पं० सीताराम जी चतुर्वेदी से निवेदन किया कि

वे इन श्लोको का ललित अर्थ उनके नीचे लिख दें। पंडित जी ने कृपा करके मेरा यह निवेदन स्वीकार कर लिया और अत्यंत ललित गद्य में इनका रूपांतर प्रस्तुत कर दिया। यह रूपांतर १९७७ में ही किसी समय किया गया।

मन की तरंग ही है। इस तरंग मे आकर मैंने प्रथम ११ श्लोको का अंग्रेजी अनुवाद ११ अक्टूबर १९७९ को और शेष ११ श्लोको का १२ अक्टूबर ७९ को कर दिया।

फरवरी ८७ के अंतिम सप्ताह में मैं कबीर कीर्ति मंदिर काशी में कबीर की उलटबासियों की टीका के संबंध में ठहरा था। कार्यारंभ बड़ी लगन से हुआ था और इसमे चार विद्वान एक साथ विचार विमर्श करते थे, तब अर्थ लिखा जाता था। तीन विद्वान थे—कबीर कीर्ति मंदिर के व्यवस्थापक-महंत श्री श्यामदास शास्त्री, राजकीय माध्यमिक विद्यालय (क्वीन्स कालेज) के भूतपूर्व प्रधानाचार्य श्री विजय कुमार राय और उस समय हिंदू विश्वविद्यालय काशी के हिंदी विभाग के अंतर्गत चलने वाले हिंदी के ऐतिहासिक व्याकरण विभाग में कार्यरत श्री राय। चौथा व्यक्ति मैं था। कार्य असम्पूर्ण ही रह गया। गुजरात से इसके प्रकाशन के संबंध मे असमर्थता व्यक्त की गई और काम ठप पड़ गया।

इन्हीं दिनों संस्कृत के दो युवा पंडित आए। उन्होने महंत श्री श्यामदास जी को संस्कृत की एक सद्यः प्रकाशित पत्रिका 'प्राच्य विद्या' का प्रवेशांक भेंट किया। इसके मुख पृष्ठ पर एक चित्र छपा हुआ था। मैंने उस चित्र के संबंध मे जिज्ञासा की, तब उन्होंने बताया कि वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती-सदन के द्वार पर एक मूर्ति है, उसी की यह प्रतिच्छवि है। मैंने पुनः पूछा कि आखिर इस मूर्ति या प्रतिच्छवि का अभिप्राय क्या है। तब उन्होने कहा नारायण शास्त्री खिस्ते ने इसका अभिप्राय एक श्लोक में लिख दिया है, जो चित्र के साथ छपा हुआ है। माँ सरस्वती ज्ञान की अजस्र धारा जिज्ञासुओं को पिला रही है।

मैंने कहा खिस्ते जी पंडित है, जो चाहे कहे। यह तो घटखर्पर काव्य के प्रणेता कवि और उसकी प्रिया प्रपा-पालिका की मूर्ति है। फिर मैंने घटखर्पर काव्य की कथा उन पंडितों को सुनाई। वे परम प्रसन्न हुए। तदनंतर मैंने कहा कि मैंने घटखर्पर काव्य का पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है। यह सुनकर वे

और भी प्रसन्न हुए और कहा कि अगली बार आप काशी आएँ, तो उक्त अनुवाद लेते आएँ। हम उसे मूल सहित 'प्राच्य विद्या' के किसी अक मे समग्रत: प्रकाशित कर देंगे और उसे पुस्तक रूप से भी निकाल देंगे।

मैं अप्रैल १८,१९ (१९८७) को कामायनी अर्द्ध शती महोत्सव में सम्मिलित होने काशी गया, तब घटखर्पर वाली पांडुलिपि लेता गया। २० अप्रैल को घटखर्पर वाली काव्य गोष्ठी कबीर कीर्ति मंदिर में आयोजित की गई। उन पंडितों को भी सूचना दी गई। पर इसमें कोई भी पंडित न आ सका। इसमें प्रमुख रूप से शामिल होने वाले लोग थे—श्री ठाकुर प्रसाद सिंह (भूतपूर्व सूचना निदेशक, उत्तर प्रदेश), डॉ० मीरा गौतम सहारनपुर, डॉ० बुच गुजरात, श्री विजय कुमार राय भूतपूर्व प्रधानाचार्य क्वीन्स कालेज वाराणसी और महंत श्यामदास शास्त्री आदि। एक घंटे की यह गोष्ठी अच्छी रही। पर पंडितों के अभाव मे यह सार्थक न रही। —२७-७-८७

अभी तक मैंने अपने ललित साहित्यकार की पूर्ण उपेक्षा की है। जीवन के अंतिम दिनों मे अपनी ललित रचनाओं को प्रकाशित देखने की लालसा मेरे मन मे उदित हो गई है। इस प्रसंग मे अमरुक शतक का मेरा ब्रजी में पद्यानुवाद इसी वर्ष मार्च १९९५ मे संस्कृत अकादमी उत्तर प्रदेश के अनुदान से प्रकाशित हुआ है। अब मैं 'घटखर्पर काव्य' के इस अनुवाद की प्रकाशन-व्यवस्था मे रत हूँ।

किशोरीलाल गुप्त
प्रतिपदा अश्विन नवरात्र २०५२
२५-९-९५

भूमिका

१. घटखर्पर कवि

प्रायः दो हजार वर्ष पहले किसी कवि ने २२ श्लोकों का एक शृङ्गारी काव्य लिखा था, जिसमे ६, २१, २२ को छोड शेष सभी श्लोक वर्षा-विरहिणी के उक्ति-स्वरूप है। छठे श्लोक मे कवि कहता है कि वर्षा-ऋतु आने पर विरहिणी मेघों को देखकर विकल हो गई और उसने मेघो से अपने प्रिय के पास संदेश ले जाने के लिए निवेदन किया। इक्कीसवे श्लोक मे परदेशी प्रियतम घर आ जाता है और विरहिणी के राग-रग के दिन फिरते हैं। बाईसवे में कवि की दर्पोक्ति है। इसमे कवि ने कहा है कि यदि कोई कवि मुझे यमक-रचना में पराजित कर दे, तो मै अपनी अनुरक्त प्रिया की सुरति-केलि की शपथ करके कहता हूँ कि स्वय प्यासा रहते हुए मैं उस विजयी कवि के लिए घटखर्पर से पानी भरूँगा। इस काव्य का अतिम शब्द घटखर्पर है। इसी को पकड़ कर उस अज्ञात कवि का एक कल्पित नाम 'घटखर्पर' रख दिया गया और यह काव्य 'घटखर्पर काव्य' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

घटखर्पर का अर्थ है मिट्टी के घडे का फूटन, फुटही गगरी, खपड़ी, छीन या ठीकरा। 'खर्पर' से प्राकृत के 'खप्पर' मे परिवर्तित होता हुआ हिंदी शब्द बना 'खपडा' (खपरा), पुन खपडा से बना खपरैल या खपड़ैल। खपड़ा घर छाने के काम आता है। खपडा से स्त्रीलिंग बना 'खपडी'। पर 'खपड़ी' छोटा खपड़ा नहीं है, यह 'कोहा' है, जिसमे 'भड़भूजे' दाना भूजते है। मिट्टी के घड़े के नीचे का आधा गोल भाग भी खपड़ी है। कभी-कभी गगरी फूट जाने पर स्वतः खपड़ी बन जाती है, और कभी-कभी गगरी को फोडकर भी आवश्यकता वश खपड़ी बनाई जाती है। इसमे औरतें महुआ, चना, मटर, दाल बनाने के लिए अरहर आदि घर पर ही भून या कहुल लेती है। कवि ने खपड़ी से पानी भरने की प्रतिज्ञा की है, यह कुछ रहस्यमय जान पड़ता है और लोगों ने कवि का नाम घटखर्पर या गगरी का फूटन या खपड़ी रख दिया, यह भी कम रहस्यमय नहीं है।

रहस्यान्वेषी अन्वेषकों का अनुमान है कि प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य के समय में संस्कृत-काव्य दरबारी हो चला था और कवि रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए राज-दरबार तथा प्रतिष्ठित दरबारी कवियों से मान्यता प्राप्त करना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में काव्य अपने प्रकृत-पथ से थोड़ा हटकर चमत्कारोन्मुख हो चला था। ऐसे ही समय में गाँव-देहात का कोई युवा कवि यश एवं अर्थ की कामना से राज्याश्रय पाने के लिए घर से चला। गर्मी के दिन थे। कहीं पर प्याऊ लगी थी। प्याऊ पर पानी पिलाने का कार्य कोई नवयुवती कर रही थी। कवि प्यासा था। पानी पीने के लिए वह प्याऊ पर गया, उसने पानी पिया और प्रपा-पालिका का रूप-पान भी। कवि भी सुरूप था, युवा था। प्रपापालिका भी उस पर मुग्ध हो गई। कवि को तो अपने गन्तव्य पर जाना ही था, वह कब तक वहाँ रुकता। वह चल पड़ा। अनुरक्ता व्यथिता प्रपापालिका से उस समय असावधानी-वश मिट्टी का वह घड़ा गिर कर फूट गया, घटखर्पर बन गया। कवि ने घट के खर्पर बनने के मर्म को भली-भाँति समझा और मन मसोसकर आगे बढ़ गया। राज-दरबार में पहुँच कर भी वह इस राग-कथा को भूल न सका। जो उसके लिए क्षणिक राग था, वह क्षणों के बंधन में ही अपने को सीमित न रख सका। काव्य के बंधन में बँधकर वह अमर हो गया, कालातीत हो गया। घटखर्पर में पानी भरने की शपथ में कवि के रागमय जीवन की यह झलक प्रतीयमान हो रही है।

कवि गाँव से सीधा दरबार में पहुँचा था और प्रकृत कवि था, भावों और रस का कवि था, यों तो शब्द चमत्कारों से पूर्ण परिचित था, पर उनका प्रयोक्ता नहीं था। उसके उस सरस सहज स्वाभाविक काव्य की कद्र राज-दरबार में नहीं हुई, क्योंकि उसमें चमत्कार न था। कवि की हँसी उड़ाते हुए दरबारी कवियों के सरदार पंडित ने कवि से कहा—यमक में भी कुछ दखल रखते हो? इस पर उस युवा कवि का मन बौखला उठा। उसी बौखलाहट में उसने ये बाईस श्लोक कह सुनाए, जिनमें प्रत्येक में दो दो यमक हैं और अंतिम श्लोक में उसने उस दरबार ही के नहीं, उस युग के सभी संस्कृत कवियों को यमक रचना के लिए ललकार दिया। संक्षेप में यह है घटखर्पर काव्य की कथा।

संस्कृत के जिस श्लोक में विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों की गणना की गई है। विद्वानों की दृष्टि में वह सूची प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि उसमें

कुछ रत्न विक्रम से बहुत बाद के हैं, उनके समकालीन नहीं। जो हो, एक अनुश्रुति घटखर्पर को विक्रमादित्य का समकालीन ही नहीं उनका दरबारी कवि भी समझती है। इसी प्रकार घटखर्पर कालिदास के समकालीन तो समझे ही जाते हैं, एक अनुश्रुति यह भी कहती है कि घटखर्पर काव्य प्रसिद्ध कवि कालिदास की ही रचना है। पर अधिकांश लोग कालिदास और घटखर्पर को दो कवि मानते हैं, उनकी अभिन्नता में उन्हें विश्वास नहीं, जो ठीक प्रतीत होता है। कालिदास कई है और विक्रम भी कई हुए हैं, जिनमे परस्पर घालमेल की पूर्ण आशंका है।

२. घटखर्पर काव्य

घटखर्पर काव्य वैसा ही मुक्त-प्रबंध काव्य है, जैसा संस्कृत में मेघदूत अथवा हिंदी में रत्नाकर जी का उद्धव शतक। प्रत्येक श्लोक मुक्तक है, साथ ही इस मुक्तकमाला में एक सूक्ष्म कथा भी संगुंफित है। कोई नायक परदेश चला गया है। कालांतर में वर्षा ऋतु आ गई। नायिका बादलों को देख विकल हो गई। प्रारंभ में उसने पाँच श्लोकों में अपनी कथा-व्यथा अपनी सखी से कही है; फिर उसने मेघ से अपने प्रिय के लिए संदेश कहा है। यह एक प्रकार से लघु मेघदूत है। कालांतर में परदेशी प्रियतम घर आ गया और विरहिणी का दुःख दूर हो गया। प्रिय-आगमन इक्कीसवें श्लोक में होता है। अंतिम श्लोक में कवि की भेद भरी दर्पोक्ति है, जिसका विवरण पहले दिया जा चुका है।

३. यमक

घटखर्पर काव्य यमक-काव्य है। संस्कृत की कविता अतुकांत होती है, पर घटखर्पर काव्य तुकांत है। तुकों में ही यमकों की स्थापना है। यमक के लिए किसी शब्द की आवृत्ति आवश्यक है। यह आवृत्ति भिन्न-भिन्न अर्थों में होनी चाहिए अथवा सार्थक और निरर्थक होनी चाहिए। एक ही अर्थ में आवृत्ति होने से यमक सिद्ध नहीं होता। भिन्न-भिन्न अर्थों में आवृत्त शब्दो वाला यमक बिहारी के इस दोहे में बहुत स्पष्ट है—

कनक कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय
वा खाए बौराय नर, या पाए बौराय

प्रथम कनक स्वर्ण के अर्थ में एवं द्वितीय कनक पीले धतूरे के अर्थ में।

निरर्थक यमक का उदाहरण लें—

मधुपराजि पराजित यामिनी

यहाँ 'पराजि' की आवृत्ति है। दोनों बार 'पराजि' निरर्थक है।

कभी-कभी आवृत्त शब्द एक बार सार्थक होता है, दूसरी बार निरर्थक, —

ऐसी परी नरम हरम पातसाहन की,
नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं

पहला 'नासपाती' सार्थक है एक फल है, 'बनासपाती' में आया दूसरा 'नासपाती' निरर्थक है।

घटखर्पर काव्य के यमक प्राय: तीसरी कोटि के हैं। प्रथम बार शब्द सार्थक है, दूसरी बार वह किसी अन्य शब्द का अंग है और स्वयं में निरर्थक है। यथा—

१. नवाम्बुमत्ताः शिखिनो नदन्ति
मेघागमे कुन्द समान दन्ति २
(क) नदन्ति = नाद करते हैं, बोलते हैं।
(ख) दूसरे 'नदन्ति' में 'न' 'समान' का अंग है, जो 'दन्ति' के साथ मिलकर 'नदन्ति' बनाता है और वह 'नदन्ति' निरर्थक है।

२. हंसा नदन्मेघभयाद्द्रवन्ति
निशामुखान्यद्य न चन्द्रवन्ति ?
(क) द्रवन्ति = उड़ जाते हैं।
(ख) द्रवन्ति स्वतंत्र नहीं है 'चन्द्रवन्ति' का अंग है और निरर्थक है।

घटखर्पर काव्य के प्रत्येक श्लोक के चरण-युग्मों में एक-एक यमक अर्थात् हर श्लोक में कुल दो यमक और संपूर्ण काव्य में ४४ यमक हैं।

४. वर्ण-वृत्त

घटखर्पर काव्य मे तो कुल २२ ही श्लोक है; पर इनमे कुल मिलाकर आठ प्रकार के वर्ण-वृत्त प्रयुक्त हुए हैं, तीन सम और पॉच अर्द्ध सम। २२ मे से कुल १४ सम छद हैं, शेष ८ अर्द्ध सम।

(क) सम वर्ण वृत्त

१. **रथोद्धता**—यह ११ वर्णो का वृत्त है। प्रत्येक चरण मे र, न, र, ल, ग होते हैं। यथा—

छादिन्त दिनकरस्य भा बने ६

घटखर्पर काव्य में कुल ७ रथोद्धता वृत्त है—६, ७, ८, ९, १०, ११, १२। सभी एक ही साथ है, छ से बारह श्लोक तक।

२. **द्रुतविलंबित**—यह परम प्रसिद्ध गण-वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे न, भ, भ, र के क्रम से कुल १२ वर्ण होते है। घटखर्पर काव्य का १७ वां श्लोक द्रुतविलंबित है—

नवकदम्ब शिरोऽवनतास्मि ते १७

३. **बसंततिलका**—यह भी परम प्रसिद्ध गण-वृत्त है। इसके प्रत्येक चरण मे त, भ, ज, ज, ग, ग के क्रम से १४ वर्ण होते है। यथा—

मेघावृत निशि न भाति नभो वितारं ३

घटखर्पर काव्य में कुल ६ बसंततिलका श्लोक हैं—३, ५, १४, २०, २१, २२

(ख) अर्द्ध समवृत्त

अर्द्ध समवृत्त मे सम चरण (२,४) एक से और विषम चरण (१,३) एक से होते है।

१ **वियोगिनी या वैतालीय या सुन्दरी**—इसके विषम चरणों में स, स, ज, ग के क्रम से १०-१० एवं सम चरणों में स, भ, र, ल, ग के क्रम से ११-११ वर्ण होते हैं। श्लोक १, १९ इसी वृत्त में है।

निचितं खमुपेत्य नीरदै
प्रियाहीना हृदयावनीरदै : १

२ पुष्पिताग्रा—इसके विषम चरणों मे न, न, र, य के क्रम से १२-१२ सम चरणों मे न, ज, ज, र ग के क्रम से १३-१३ वर्ण होते है। श्लोक इसी वृत्त मे है--

कुसुमित कुटजेषु काननेषु
प्रियरहितेषु समुत्सुकाननेषु १३

३ आख्यायिनी—विषम चरणों में—त, त, ज, ग, ग—११ वर्ण, सम णो मे—ज त ज ग ग—११ वर्ण। श्लोक २, १६ इस वृत्त में है। यथा –

हंसा नदन्मेघ भयाद्रवन्ति
निशामुखान्यद्य न चन्द्रवन्ति २

४.५. दो नामहीन वृत्त

घटखर्पर काव्य के श्लोक ४, १५ तथा श्लोक १२ भी अर्द्धसम वर्ण वृत्त पर इनके नामों का पता नहीं चलता।

(क) श्लोक ४, १५—

विषम चरण—स, स, ज, ग, ग—११ वर्ण
सम चरण—स, भ, र, ज—१२ वर्ण

यथा—

सतडिज्जलदार्पितं नगेषु
स्वनदम्भोधरभीत पन्नगेषु ४

(ख) श्लोक १८—

विषम चरण—न, न, र, य—१२ वर्ण
सम चरण—स, भ, र, य—१२ वर्ण

यथा –

तरुवर विनतास्मि ते सदाहं
हृदयं मे प्रकरोषि किं सदाहम् १८

५. घटखर्पर काव्य के संबंध में तीन आलोचकों के मत

(क) रामचरित उपाध्याय का मत

घटखर्पर काव्य से हिंदी वालों का परिचय कराने वाले द्विवेदी युग के बोली हिंदी के प्रसिद्ध कवि पं० रामचरित उपाध्याय हैं। उपाध्याय जी

संस्कृत के पंडित थे । काशी में रहकर इन्होंने सुप्रसिद्ध पं० शिवकुमार शास्त्री से अध्ययन किया था । उपाध्याय जी को यह काव्य अच्छा लगा और उन्होंने इसकी संस्कृत और हिंदी में टीका कर दी, जो १९१४ ई० में बंबई के निर्णय सागर प्रेस से प्रकाशित हुई और १९७७ ई० तक तो वेंकटेश्वर प्रेस बंबई में सुलभ भी रही है । इसकी एक पृष्ठीय भूमिका में उपाध्याय जी ने इस काव्य के संबंध में यह अभिमत प्रकट किया है—

'यह ग्रंथ अति छोटा होने पर भी मनोहर है और कालिदास के मेघदूत की छटा रखता है । विशेष यह है कि मेघदूत नायक के तरफ से कहा गया है और यह नायिका के तरफ से तथा उसमें यमक नहीं है, इसमें यमक संपूर्ण श्लोकों में है । वियोगिनी स्त्री की दशा इस ग्रन्थ से टपकती मालूम देती है ।'

(ख) पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' का मत—

पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी' संस्कृत, हिन्दी, उर्दू के विद्वान और सहृदय कवि थे । उन्होंने 'गीति काव्य का विकास' नामक एक सुन्दर एवं प्रौढ़ ग्रंथ लिखा है, इसमें संस्कृत और हिन्दी के गीति काव्यों का विवेचन है । इस ग्रंथ में घटखर्पर के संबंध में प्रवासी जी के विचार निम्नांकित है—

'इस कवि के संबंध में कोई प्रामाणिक उल्लेख आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है । एक मात्र घटखर्पर काव्य ही, जिसमें कुल बाईस ही गीतियाँ हैं, मिलता है । इसमें कोई नववधू अपने प्रवासी पति के पास बादल से संदेश भेजती है । कालिदास ने पति की ओर से पत्नी को संदेश भेजा है, इस कवि ने उनके विपरीत कल्पना की है । मेघदूत में एक कथा की कल्पना है, जिससे वह सबन्ध गीति काव्य हो गया है, इसमें वैसी कोई कथा-कल्पना नहीं है, इसीलिए इसे मैंने स्वच्छन्द गीति काव्य ही माना है । कवि के हृदय-पक्ष को चमत्कार-प्रियता ने दबा लिया है, इसीलिए गीति की आत्मा इसमें नहीं आ पाई है । प्रियतमा (नारी) के कोमल करुण भावों का उद्गार जहाँ अपेक्षित था, वहाँ कवि ने अपना मन बेलबूटे काढ़ने में लगा दिया है, इसलिए घटखर्पर को महान गीतिकारों में प्रतिष्ठित स्थान नहीं मिल सका ।

× × ×

'घटखर्पर काव्य की कल्पना निश्चित रूप से मेघदूत को देखने के पश्चात् हुई है । बादलों को देखकर यहाँ विरहिणी कहती है—

लिप्ठ ण्न पग्न्शमेविना ारयिप्यश हुतेन गा बिना

फिर वह हंस, चातक, मोर आदि पक्षियों और कुटज पुष्पों तथा बाढ़ की नदियों के नाम गिनाती है और वाक्चातुर्य से अपनी व्यथा व्यक्त करती है और अन्त में बादल उसका संदेश-वाहक बनने की स्वीकृति भी प्रदान करता है। ऐसी स्वीकृति आदि की कल्पना मेघदूत के अंत में जोड़ दिए गए प्रक्षिप्त वृत्तों में मिलती है। यमक के निबंधन में भी किसी प्रकार की विशिष्ट रमणीयता दृष्टिगोचर नहीं होती, जैसी की 'रघुवंश' के नवम सर्ग में सहज ही उपलब्ध है। इसका रचयिता निश्चय ही निम्न कोटि का कवि है। 'मेघदूत' जैसी रचना प्रस्तुत करने की असमर्थता के ही कारण उसके विपरीत कथा-कल्पना कवि को करनी पड़ी और उस महाकवि के सदृश प्रतिष्ठा और भावुकता के अभाव में यमक का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। भावुक जनों का इस रचना द्वारा परितोष नहीं हो सकता, चमत्कार-प्रेमी जन भले ही कुछ देर तक वाह्-वाह् करें।'

जैसे तुलसी की तुला पर आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने केशव को तोल-कर उस महाकवि के साथ न्याय नहीं कर पाया, उसी प्रकार कालिदास के मानदंड पर घटखर्पर को जाँच कर के क्या इस कवि के साथ न्याय किया जा सकता है? यदि यह कवि महाकवि कालिदास का पूर्ववर्ती हो, तो प्रवासी जी की आलोचना कितनी खरी रह जायगी?

मैं मानता हूँ घटखर्पर काव्य में कथा-कल्पना है, वह विशद नहीं है, सूक्ष्म है, पर है। इसी प्रकार घटखर्पर काव्य में मेघ ने संदेश-वाहक बनने की स्वीकृति कहीं नहीं दी है, जैसा कि प्रवासी जी कह रहे हैं।

३. डॉ० जयशंकर त्रिपाठी का अभिमत

डॉ० जयशंकर त्रिपाठी के ललित निबंधों के संग्रह 'पर्वतों से झाँकता वक्र नयन' (१६७२ ई०) में 'घटखर्पर की जीवनी' है। इस निबंध में कवि के सम्बन्ध में निबंध लेखक की यह उक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है—

'एक कवि था, जिसका नाम नहीं मालूम है। उसके जिस कृतित्व की चर्चा की जाती है, उसकी उक्ति-रमणीयता देखकर कुछ विद्वान् उसे कालिदास ही कहते हैं। जिस कवि को कालिदास कहने की लालसा विद्वान आलोचक को हो, उसके कवित्व को श्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए अतिरिक्त प्रमाण की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।'

कवि की श्रेष्ठता के संबंध में संदेह नहीं। वह निश्चय ही निम्नकोटि का नहीं है। हाँ, यह दूसरी बात है कि वह महाकवि कालिदास के हिमालयीय शिखरत्व तक न पहुँच पाता हो। पर उसमें ऐसा कुछ है, जिसने उसके कालिदास होने का भ्रम पैदा करने में सफलता पाई। —१३-२-७७

६. प्राकृत की एक गाथा

घटखर्पर काव्य की पीठिका को प्रतिबिंबित करने वाली यह गाथा गाथा-सप्तशती (गाहा सत्तसई) मे मिलती है—

उद्धच्छो पिअइ जलं जह जह विरलङ्गुली चिरं पहिओ
पावालिआ वि तह तह धारं तणुइँ वि तणुएइ
—द्वितीय शतक, गाथा ६१

इसका संस्कृत रूपांतर यह है—

उर्ध्वाक्षः पिबति जल यथा यथा विरलाङ्गुलिश्वरं पथिकः।
प्रपापालिकापि तथा तथा धारां तनुकामपितनूकरोति॥

जैसे-जैसे पथिक आँखें ऊपर उठाकर अपनी अँजुरी की उँगलियों को विरल करके जल पीता है, वैसे-वैसे प्याऊ पर पानी पिलाने वाली भी पतली धारा को और पतली करती जाती है।

पथिक अपनी उँगलियों को फैला देता है, जिससे दो-दो उँगलियो के बीच आँतर (अन्तर) पड़ जाय और इस आँतर से पानी नीचे गिरता जाय और वह देर तक पानी पीता रहे और देर तक अपनी आँखे ऊपर उठाए पानी पिलाने वाली के रूप को देखने का सुख प्राप्त करता रहे। वह 'पानी' नही पी रहा है, 'पानिप' पी रहा है।

प्रपापालिका भी चतुरा है। वह अपने रूप-पानिप के पिपासु पथिक को परख लेती है। उसे भी पिपासु के रूप-रस को पीने की अभिलाषा हो जाती है। अतः वह भी जल-धारा को बराबर पतला करती जाती है, जिससे वह देर तक इस पानिप-पान की क्रिया को चालू रख सके।

दोनों चालू हैं, चलते पुरजे है, चतुर है, रस-रसिक है, क्रिया-विदग्ध है।
२७-७-८७

७. संस्कृत का एक श्लोक

डॉ० जयशंकर त्रिपाठी ने 'घटखर्पर की जीवनी' में इस प्रकरण से मिलता-जुलता एक संस्कृत श्लोक भी दिया है। यह प्रसंग त्रिपाठी जी के ही शब्दों में यहाँ अवतरित किया जा रहा है।

"जब मैं अपने कवि के सम्बन्ध में ये अटकलें लगा रहा हूँ, तब मुझे संस्कृत के सूक्ति काव्य का वह पथिक ध्यान में आ जाता है, जो प्रपापालिका पर रीझकर अंजली में मुँह लगाकर जल पी रहा है। उसे ललचाई आँखों से देख रहा है और सोचता है कि क्या अच्छा होता, मैं अगस्त्य हो जाता और पानी पीता ही रहता. दूसरी ओर प्रपापालिका भी उस पर रीझी हुई है, वह चाहती है कि चारों सागर मेरे घड़े में आ जाते और मैं इस पथिक को पानी पिलाती ही रहती।

अपः पिबन् प्रपापालीमनुरक्तो विलोकयन्।
अगस्त्यं चिन्तयामास चतुरः सापि सागरान्॥

८. इन्द्रायुध

घटकर्पर काव्य में 'इन्द्रायुध' दो बार आया है—

१. सेन्द्रायुधश्च जलदोऽतिरसन्निभानां
संरम्भमन्नमावहति भूधर सन्निभानाम्। ३।

इधर इन्द्रायुध के साथ गरजता हुआ मेघ इन पर्वत के समान इभों (हाथियों) तक को क्रुद्ध किए डाल रहा है।

मेरी समझ से यहाँ इन्द्रायुध इन्द्रधनुष के लिए नहीं आया है। इन्द्र का असली अस्त्र तो उनका वज्र है, जिसे गिराकर वे पुरा काल में उड़ते पर्वतों के पंख काट डालते थे। इन्द्रधनुष से भला हाथी क्या डरेगा, क्रोध करेगा? भय तो उसे वज्र से ही होगा।

टीकाकारों ने यहाँ इन्द्रायुध को इन्द्रधनुष ही माना है।

दूसरा प्रयोग है—

तासामृतुः सफल एव हि या दिनेषु
सेन्द्रायुधाम्बुधर वर्जित दुर्दिनेषु। २०।

यहाँ इन्द्रायुध इन्द्रधनुष के लिए ही प्रयुक्त है। इन्द्रायुध (इन्द्रधनुष) के साथ अंबुधर (बादल) दुर्दिन (वर्षा) में गरज रहा है। ऐसे दुर्दिन तो उन्हीं के सफल हैं, जो प्रिया-प्रिय दिन में भी आलिंगनबद्ध है।

६. मंगलाशा

जिस प्रकार श्लोक २१ में घटखर्पर का प्रोषित पति बादलों से अपनी बिरहिणी प्रिया की व्यथा-कथा सुनकर घर लौट आया और दोनों विरही वियोगी से संयोगी बने, उसी प्रकार सभी प्रेमीजन कभी वियुक्त न हों।

सुधवैं, भदोही
२५ सितम्बर १९९५
आश्विन नवरात्र, प्रतिपदा २०५२

किशोरीलाल गुप्त

घटखर्पर काव्य

(१) निचितं खमुपेत्य नीरदैः
प्रियहीनाहृदयावनीरदैः ।
सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ
रविचन्द्रावपि नोपलक्षितौ ॥

●

सखी, जिन विरहिणियों के पति परदेश चले गए हैं, उनके हृदय वाले बादल सारे आकाश में उमड़ फैले हैं, वर्षा के जल से धरती की कीचड़ हो गया है, (इन बादलों के कारण) न सूर्य ही निकलता, उगता। (ऐसी दशा में बता, मेरे प्रिय कैसे आ पावेंगे।)

●

उमड़ घुमड़ कर व्याप्त हो गए नीरद नभ में,
प्रिय-विहीन विरहिनियों के उर को विदीर्ण जो,
करते रहते।
वर्षा-जल से मिलकर भू-रज पंक हो चला।
रवि औ चंद्र घिरे घन से, न दिखाई देते।
(फिर कैसे लौटे मेरा परदेशी प्रियतम ?)

●

ाए नभ मे सजनी, चहुँ ओरन ते बदरा कजरारे
पीय-विहीन वियोगिनि के हिय को है विदारनवारे ये आरे
सों मिलिकै बरखा-जल धाइ बहै जिमि पंक-पनारे
सूरज चंद्र छिपे घन मे, (घर कैसे चलैं परदेसी पिया रे ?)

●

Just look my maid.
The clouds have overcast the sky.
To tear asunder and torture the hearts
Of poor ladies, whose husbands are away.
The dust, intermingled with water
Has turned into mud.
(Being hidden behind the curtain of the clouds),
Neither the sun nor the moon is visible.
(Then how can my darling come ?)

(२) हंसा नदन्मेघभयाद्द्रवन्ति
निशामुखान्यद्य न चन्द्रवन्ति
नवाम्बुमत्ता शिखिनो नदन्ति
मेघागमे कुन्दसमानदन्ति

●

अरी कुंद के फूलों के समान उजले दाँतों वाली सखी, वर्षा के दिनों मे गरजते हुए बादलों से डरे हुए हंस वेग मे उडे चले जा रहे है. साँझ को चन्द्रमा भी नहीं दिखलाई पडता. वर्षा का नया-नया जल पीकर मतवाले मोर कूके जा रहे है (फिर भी मेरा प्रिय न जाने क्यों नही आ रहा है।)

●

गरज रहे मेघों के डर से, हंस उड गए मान-सरोवर।
मेघागम मे चंद्रवत दिखलाई देता नहीं निशामुख।
नव-जल से मतवाले शिखि आनंद कर रहे
कुंद-समान-दत-वाली सखि।
(फिर भी प्रियतम नहीं लौटता ?)

●

डरि मेघन के घन गर्जन सो, उडि मान-सरोवर हंस सिधारे
घन-आगम मों न निशामुख को मुख-चंद्र दिखात कहूँ हू निहारे
नादत (नाचत) है सिखि के गन, पी नव-अंबु बने मतवारे
कुंद-कली-सम दंतनवारी सखी, (न पिया जू तऊ मो पधारे)

●

O Kund-bud-like white toothed maid,
On the arrival of the clouds,
Frightened with their thunder
Swans are flying away.
The eve too is not accompanied with moon.
Being intoxicated with fresh water of clouds
The peacocks are making merry.
(Why even then is my darling not returning ?)

(२) मेघावृत निशि न भाति नभो वितार
निद्राभ्युपैति च हरि सुखसेवितारम्
सेन्द्रायुधश्च जलदोऽतिरसन्निभानां
संरम्भमावहति भूधरसम्मिभानाम्

●

सखी, बादलों से घिरा हुआ आकाश तारो के बिना तनिक भी नहीं सुहा रहा है, उधर (लक्ष्मी के साथ) सुख से सोने वाले विष्णु गहरी नींद ले रहे है। इधर इन्द्रधनुष के साथ गरजता हुआ मेघ इन पर्वत के साथ हाथियों तक को क्रुद्ध किए डाल रहा है। तब भला मेरी तो गिनती ही क्या है ?)

●

मेघावृत निशि मे, तारों से हीन गगन न सुहाता।
(क्षीर-सिंधु मे, शेप-सेज पर, लक्ष्मी सेवित) हरि सुख सोते।
(किससे कहें विपति फिर अपनी ? कौन हरे पर पीरा ?)
इन्द्रायुध ले जलद गरजता है, प्रचंड हो,
क्रोधित करवाता भूधर सम भारी करि को।
(फिर हम कामिनियाँ कैसे सुख से सो सकती ?)

●

सोहत तारक-हीन नही नभ, मेघन सो घिरी या निसि मा रे
सोवत है सुख सों हरि जू, लछिमी-सँग सिंधु मे पाँव पसारे
इन्द्र को आयुध लै गरजै घन, (फारत है नभ-कानन भारे)
सो सुनि पर्वत से गजराज सरोष हों, (कामिनि कौन कथा रे ?)

●

Overclouded night does not look pleasant without stars,
(On one hand), Hari is taking a deep and sound slumber
(With Lakshmi in the milk-sea).
Cn the other hand), the cloud, dark
With Indra's thunder-bolt is enraging the hillock-like elephants.
(Then what of us, ladies feeble ?)

(४) सतडिज्जलदार्पितं नगेषु
स्वनदम्भोधरभीतपन्नगेषु
परिधीर रवं जलन्दरीषु
निपतत्यद्भुतरूपसुन्दरीषु

●

देख री सखी, ये बिजली चमकाते हुए बादल जो पानी बरसाए डाल रहे हैं, वह पानी गड़गड़ाता हुआ उन पर्वतों पर जा पड़ रहा है, जिन पर बसे हुए साँप बादलों के गरजन से डरे पड़े हैं और वहाँ से वह जल उन गुफाओं में जा जाकर पड़ रहा है, जिन पर हरी-हरी सुन्दर घास छाई हुई है।

●

तड़ित साथ ले जलद बरसता है नग ऊपर,
यह जल बड़े वेग से प्रविशित होता जाता,
उन दरियों में, जो तृण-अच्छादित होने से,
लगती है सुंदरियों सी अत्यंत मनोहर,
जिनमें घन-स्वन से डर कर जा छिपे नाग है।

●

साथ लिए तरुनी तड़िता, घन डारत है नग पै जल-धारैं
धाइ कै वेग सों घोर मचावत, सो जल आइ दरीनि-दरारैं
सो दरी सुंदरी के सम लागत है, मन भावन बीरुध धारैं
घन के स्वन से भय-भीत बसे, जिनमें धुसि पन्नग लैं फुफुकारैं

●

Just see, aceompanied with their lightenings,
These clouds are pouring forth water,
On mountains, which with coverage of green grass
Appear as beauteous damsels.
This water is rushing violently in the mountain clefts,
In which, frightenad with the thunder of clouds
Snakes are lying hidden.

(५) क्षिप्र प्रसादयति सम्प्रति कोऽपि तानि
कान्तामुखानि रति विग्रहकोपितानि
उत्कण्ठयन्ति पथिकान् जलदा स्वनन्तः
शोकः समुद्भवति तद्वनितास्वनन्त

●

अरी सखी, इस समय कोई तो अपनी उन प्यारियों को मनाने मे लगे है, जो रति-कलह के कारण रूठकर मुँह फुलाए पड़ी है, कही गरजते हुए बादल परदेस गए हुए लोगों के घर लौटने को उत्कंठित किए डाल रहे है, तो उनकी स्त्रियों को शोक सताए डाल रहा है।

●

रति-विग्रह से कुपित प्रिया के मुख-मडल को,
कोई बड़भागी प्रसन्न करता है संप्रति।
अपने घन-स्वन मे पथिको को, घर चलने को
उत्कंठित करते है नीरद, शोक अनंत हो रहा है पर
उनकी विरह सताई वनिताओं को घर पर।

●

या बरखा ऋतु में रति-विग्रह से कुपितानि कोऊ मनुहारें
(बारहिं बार करै सपथैं शिव की, औ हरोजन पै कर धारे)
परदेसिन कों घर लौटन को, उतकठ बनावत घोर घटा रे,
उनकी बनितान के सोक को अत नहीं, सहती जो मनोज-बिथा रे

●

At present, some are striving hard to please
Their displeased beloveds, offended in love-strife.
On one hand these clouds are creating anxiety to return home
In the minds of those, who have gone far off,
(In quest of power and pelf)
On the other hand, the deep distress of their forlorn wives
Knows no bound, knows no bound.

(६) छादिते दिनकरस्य भा वने
खाज्जले पतति शोकभावने
मन्मथे च हृदि हन्तुमुद्यते
प्रोषित प्रमदयेदमुद्यते

●

सूर्य की किरणों का समूह जब बादलों ने ढक लिया और (विरहिणी का) शोक बढ़ाने वाली जब आकाश से वर्षा होने लगी और जब कामदेव उस नवेली के हृदय में भड़क उठा, उस समय परदेश में गए हुए पति वाली वह नायिका अपनी सखी से यह सब कहने लगी।

●

दिनकर-आभा-वन आच्छादित है नीरद से।
नभ से बरस रहा जल, शोक बढ़ाने वाला।
मन्मथ ऐसे में मन मथने को है आतुर।
तब प्रोषित-प्रमदा अपनी सखि से यों बोली।

●

जब धाइ के छाइ गए रवि-आभा के उज्ज्वल कानन पै घन कारे
जब मूसलधार लगे बरसैं, वा वियोगिनि सोक बढ़ावन वारे
जबहीं मन कौं मथिबे के लियैं, मनमत्थ ने आपने हाथ निकारे
मतवारी बनी वा वियोगिनी ने, अलि सों निज ये तब बैन उचारे

●

Thus spake the bereft woman to her maid,
When the clouds covered the forest of the sun's rays,
When the rain from the heaven poured down
To increase the anguish of the seperated ones,
When the Cupid made hurry,
To bend her heart heavy with grief.

(७) सवकालमवलम्ब्य तोयदा
आगताः स्थ दयितो गता यदा
निर्घृणेन परदेशसेविना
मारयिष्यथ हि तेन मां विना

●

बताओ रे बादलो, जब तक मेरे प्रिय साथ रहे, तब तक तो तुम न जाने छिपे पड़े रहे और जब वे चले गए, तब तुम सब (मुझे सताने) आ धमके मैं समझ रही हूँ कि मेरे परदेश गए हुए निर्दयी पति के न रहने पर तुम प्राण लिए बिना न छोड़ोगे।

●

अब तक रहे जोहते बादल, और न आए,
अब आए हो, जब मेरा पिय चला गया है।
(मुझे अकेली जान, यही क्या धर्म तुम्हारा ?)
उस निर्दय परदेशी के बिन, मुझे अवश्य मार डालोगे,
(ऐसा लगता)।

●

जब लौं पिउ पास रह्यो हमरे, तब लौं कहौ नीरद क्यों न पधारे ?
आए हो आनि अकेलि हमैं, परदेस पिया जू जबै है सिधारे
वा निरदयी परदेसी बिना, हमैं मारिहौ (जानि परै हमैं या रे)
(जीवन देत कि जीवन लेत हौ, है अति बज्जुर तेरो हिया रे)

●

O cloud, thou wert awaitig so long,
(As long my darling was with me,
Thou didst not come)
When my dear one has departed
Thou hast come (to bereave me.)
In the absence of that merciless fargone traveller.
(I am afraid) thou shalt kill me.

(८) ब्रूत त पथिकपांसुलं घना
यूयमेव पथि शीघ्रलङ्घना।
अन्यदेशरतिरद्य मुच्यतां
साथवा प्रियवधू किमुच्यताम्

अरे, उड़ चलने वाले बादलों, तुम उस परदेश चले जाते हुए मेरे पति पथिक से जा कहो कि इस वर्षाकाल में परदेश जाने का विचार छोड दे और यदि वह आने को तैयार न हो तो उससे यही पूछते आओ कि तुम्हारी पत्नी को तुम्हारा क्या सन्देश जा सुनावें।

अरे बादलो, उस लंपट पंथी से बोलो—
(जो अपराध बिना ही मेरे, इस वर्षा में चला जा रहा,
मुझको तजकर)
तुम सत्वरगामी हो, (उसको लोगे पकड, न संशय इसमे)।
—'इस वर्षा में अन्य-देश-रति करो विसर्जन, (घर को लौटो)'
(यदि न तुम्हारी बात सुने वह, तो यह पूछो)—
क्या अपनी प्रोषिता प्रिया से कुछ कहना है?
(जो कुछ कहना, कहो—तुम्हारा सन्देशा पा,
शायद वह बच ही जाए, जी जाए फिर से)।

पापी पिया तजि मोहि चल्यो परदेस को, मो अपराध बिना रे
सत्वरगामी बड़े घन हो, द्रुत जाइ कहौ यह मेरी बिथा रे
या बरखा मैं तजै परदेस की प्रीति, न जाइ, घरै न बिसारे
जो नहिँ लौटे, तो पूछहु तासन, मेरे लिए है सनेस कहा रे

O cloud; thou art quick to go,
Go and tell that dusty libertine, my husband,
(Who has isolated me without any fault of mine)
That he should abstain from going
To other parts of land in these rains
If he does not return, ask him.
"Hast thou some message to give to thy dear wife ?"

(९) ९ नाथ सम्प्रति
प्रस्थिता वियति मानसं प्रति
चातकोऽपि तृषितोऽम्बु याचते
दुःखिता पथिक सा प्रिया च ते

६५

●

देखो बादलो), मेरे पति से यह भी कह देना कि हंस भी तो मानसर रोवर की ओर उड़े चले जा रहे है, प्यासा चातक भी चोंच ऊपर उठाए माँग रहा है और वह तेरी प्यारी भी घड़ी-घड़ी तड़फ रही है।

●

(हे घन फिर उससे यह कहना)

हे नाथ, हंसमाला सम्प्रति है उड़ी जा रही मानस को,
प्यासा चातक भी स्वाती के जलधर से जल है माँग रहा।
हे पथिक, तुम्हारी प्रेयसि भी हो रही व्यथित (अन्तः-पुर में)।

●

या बरखा में है हंसन के दल, मानसरोवर ओर सिधारे
प्यासो पपीहरा स्वाति बलाहक को, जल बूँदन हेतु, पुकारे
प्यारी तिहारी विलोकन लौं पथ, हे पति, पंथ पै आँखि पसारे
पीड़ित या अँगना-अंग-अंग को, पावै अनंग-विराग बिगारे

●

(O Clouds, tell him further on)
The array of swans is rushing to Mansarovar.
The thirsty Chatak also is asking (the swati cloud),
for drops of water.
Likewise thy beloved too is afflicted

(१०) नीलशस्यमतिभाति कोमलं
वारि विन्दति च चातकोऽमलम्
अम्बुदैः शिखिगणो विनाद्यते
का रतिः प्रिय मया विनाऽद्यते

●

(देखो मेघो ! मेरे पति से कहना कि) चारों ओर छाई हुई घास की हरियाली बड़ी सुहावनी लग रही है, पपीहा भी स्वच्छ (स्वाती का) जल माँगे जा रहा है, बादल अलग मोरों का मन बहला रहे हैं, ऐसी स्थिति में मेरे बिना वहाँ कौन बड़ा सुख मिला जा रहा है।

●

कोमल हरी घास अति शोभित।
चातक अमल स्वाति-जल पीता।
शिखि-गण केका करें देख घन।
मेरे बिना कौन सुख, तुमको ?

●

सोहे हरे-हरे, कोमल-कोमल, चारिहुँ ओर घने तृन भारे
पीवत है जल निर्मल स्वाति के, प्यासे पपीहरा जीभ पसारे
देखत ही घन केका करें बरही गन, ह्वै मन मे मतवारे
मेरे बिना परदेसी पिया, तुमको सुख कौन सो, बोलो उहाँ रे ?

●

(O Clouds, tell him further)
Green and tender grass is pleasant to look.
The Chatak is drinking dustless fresh water (of Swati)
Peacocks also are merrily crying to look at the clouds.
What pleasure hast thou there without me ?
(Do come back at once.)

(११) मेघशब्दमुदिताः कलापिनः
प्रोषिताहृदयशोकलापिनः
तोयदागमकृशावसादयते
दुर्धरेण मदनेन साऽद्य ते

●

(यह भी कहना कि) मेघ के गर्जन को सुनकर प्रसन्न हो उठने वाले मोरो
वाणी विरहिणियों को सताए डाल रही है और तेरी प्यारी को वर्षा के
मन के समय से ही दुर्धर्ष कामदेव ने इतना सता डाला है कि वह सूखकर
ा हो चली है।

●

मेघ-शब्द से मुदित कलापी बोल रहे है,
प्रोषितपतिकाओं के उर मे शोक भर रहे।
मेघागम से तन्वी हुई तुम्हारी प्यारी,
उस पर दुर्धर मदन धनुर्धर से है ताड़ित।

●

मेघन की धुनि को सुनि कैं, बरहीगन ह्वै मतवारे पुकारें
केकिन-केका वियोगिनि-हीय मे, सोक की आगि अनूप प्रजारे
एक तो नीरद-आगम से दुबरी भई, तो तरुनी मन मारे
तापर दुर्धर मैन-धनुर्धर, वर्षत आपने बान बिसारे

●

(O clouds, whisper in the ears of my love.)
Gay with the thunder of clouds
Peacocks are crying aloud.
Their cry is distressing the ladies,
Whose husbands have gone far off
The tender beloved wife of thine has become slender
Due to commencement of rains.
Further she is being tortured by Cupid,
The great irresistible warrior.

(१८) किं कृपापि तव नास्ति कान्तया
पाण्डुगण्डपतितालकान्तया
शोकसागरजलेऽद्य पातितां
त्वद्गुणस्मरणेव पाति ताम्

●

(यह भी कहना कि) तुम्हारे विरह में तुम्हारी जिस सुंदरी के पीले पड़े हुए गालों पर बाल आ फैले है, उस अबला पर क्या तुम्हें दया नही आती, जो शोक-समुद्र में पड़ी हुई केवल तुम्हारे गुण-स्मरण करके ही अपने प्राण बचाये हुए है।

●

पीले पड़े कपोलो पर लट, लटकी है घुँघराली जिसके,
उस अपनी कांता पर तुम क्यों कृपा-दृष्टि हो नेक न करते ?
शोक-सिंधु के जल मे जो है मग्न हो रही,
तव गुण-स्मरण-मात्र तृण-सा है एक सहारा

●

पीरे कपोलन पै लटके लट के दल है बे-सँवारे-सिँगारे
ता अपनी तरुनी तिय पै, कस नाहिँ कृपा करि क्योहू निहारे
शोक-समुद्र के बारि में खाइ पछार गिरी, नहिँ कोऊ सँभारे
तो गुन की स्मृति ह्वै तिनका, तिहि डूबते कों केहू भाँति उबारे

●

(Please ask him, O clouds)
Why dost *thou* not become compassionate,
On the frail woman, on whose pale cheeks
Her uncombed forelocks scatter !
She has fallen in the sea of grief,
Only the rope of the remembrance of thy excellence,
Has some how saved her.

(१३) कुसुमितकुटजेषु काननेषु
प्रियरहितेषु समुत्सुकाननेषु
वहति च कलुषे जले नदीनाम्
किमिति च मां समवेक्षसे न दीनाम्

●

प्यारे,) उन वनों में कोरैया के फूल फूल रहे है, एक दूसरे से बिछुड़े
ड़े को एक दूसरे से मिलने की उतावली हो रही है और नदियों का
गँदला हो जाने पर भी तुम कैसे हो कि मेरे जैसी दुखियारी को आकर
नहीं रहे हो।

●

कुटजों से कुसुमित है कानन।
विरही जन है उत्सुक आनन।
नदियों में कलुषित जल बहता
(ऐसी वर्षा ऋतु में भी प्रिय)
मुझ दीना को क्यों न देखते ?

●

या बरखा में कुरैया के फूल खिले, खिलि छा गए कानन सारे
उत्सुक आनन ह्वै विरही जन, पीतम-पंथ पै दीठि पसारे
मैलोइ नीर भरे उफनात है, जात बहे सिगरे नद नारे
तौऊ नहीं तुम देखत हौ मोहिं दीन मलीन अधीनहिं प्यारे

●

(O Cloud, do tell him)
The Kutaj trees have blossomed in the groves,
Anxiety to meet their loves is apparent,
On the faces of the sepearated ones.
Dirty wafer is flowig in rivers,
Why dost thou not even then behold me,
Thy poor and pitiable wife ?

(१४) मार्गेषु मेघसलिलेन विनाशितेषु
कामोधनुः स्पृशति तेन विना शितेषु
गम्भीरमेघरसितव्यथिता कदाऽहम्
जह्यां सखि प्रियवियोगजशोकदाहम्

●

सखी, इस समय जब वर्षा के जल ने सारे मार्ग बिगाड़ डाले है और कामदेव अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणो से बेधे डाल रहा है, ऐसे समय इन मद-मद गर्जन करने वाले बादलों से दुखी मुझ दुखियारी के प्रिय-वियोग के शोक की जलन कब दूर हो पावेगी।

●

मेघ-सलिल से मार्ग विनाशित।
(कैसे घर फिर आवे प्रियतम ?)
प्रिय के बिना काम धनु धरता
है प्रचड बाणो वाला निज।
मैं गभीर-मेघ-ध्वनि व्यथिता।
प्रिय - वियोग - उत्पन्न-दाह-दुख
जाने, सखि, कब दूर हो सके।

●

मेघन के जल सों सब मारग भ्रष्ट भए, (किमि आवै पिया रे)
पीउ-बिना धनु धारत काम है, आपने तीखन-ईखन-वारे
बदरा बदराहन की सुनि कै धुनि, बाढ़त अग-अलंग बिथा रे
पीउ-वियोग-सँजात सखी, दुख से कब छूटिहैं प्रान हमारे

●

Oh my maid, ways have perished due to rains,
(Leaving no way for my darling's return.)
In absence of my love, the Cupid has fixed his sharp
Arrows of flower's on his bow.
Tormented by the deep thunder of clouds
When shall I be free from this burning bereavement.
Caused by the pangs of separation from my love ?

) नववारिकणैर्विराजितानां
स्वनदम्भोधरवामवीवितानाम्
मदनस्य कृते निकेतकानां
प्रतिभान्त्यद्य वनानि केतकानाम्

●

' नये जल मे धुले हुए और गरजते हुए बादलों के साथ
हिलती लहराती हुई केतकी (केवड़े) की झाड़ियाँ ऐसी लग
ादेव के लिए कुंजें बन खड़ी हुई हों।

●

नव - नव वारि - कणों से राजित,
गर्जित मेघ-वायु से कंपित,
मदन-देव के सुठि निकेत-सा,
शोभित आज केतकी-कानन।

●

पातन-पातन पै नव वारि-कनानि को है यह धारे
गर्जित-मेघ-समीरन सों तनु कंपित होत है जात महा रे
खा में सुसोभित केतकी-कानन मोहन मो विमना रे
काम-निकेतन सों सुठि सुंदर, मंजुल मोहक आजु बना रे

●

shrubs are sprinkledover with fresh rain-drops;
re trembling with winds blow,
ıpanied with clouds sound deep
shrubs appear to be the very abode of Cupid.

(१४) मार्गेषु मेघसलिलेन विनाशितेषु
कामोधनुः स्पृशति तेन बिना शितेषु
गम्भीरमेघरसितव्यथिता कदाऽहम्
जह्यां सखि प्रियवियोगजशोकदाहम्

●

सखी, इस समय जब वर्षा के जल ने सारे मार्ग बिगाड डाले है और कामदेव अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणो से बेधे डाल रहा है, ऐसे समय इन मंद-मद गर्जन करने वाले बादलो से दुखी मुझ दुखियारी के प्रिय-वियोग के शोक की जलन कब दूर हो पावेगी ।

●

मेघ-सलिल से मार्ग विनाशित ।
(कैसे घर फिर आवें प्रियतम ?)
प्रिय के बिना काम धनु धरता
है प्रचड बाणो वाला निज ।
मै गभीर-मेघ-ध्वनि व्यथिता ।
प्रिय - वियोग - उत्पन्न-दाह-दुख
जाने, सखि, कब दूर हो सके ।

●

मेघन के जल सों सब मारग भ्रष्ट भए, (किमि आवै पिया रे)
पीउ-बिना धनु धारत काम है, आपने तीखन-ईखन-वारे
बदरा बदराहन की सुनि कै धुनि, बाढ़त अग-अलंग विथा रे
पीउ-वियोग-संजात सखी, दुख से कब छूटिहैं प्रान हमारे

●

Oh my maid, ways have perished due to rains,
(Leaving no way for my darling's return.)
In absence of my love, the Cupid has fixed his sharp
Arrows of flower's on his bow.
Tormented by the deep thunder of clouds
When shall I be free from this burning bereavement.
Caused by the pangs of separation from my love ?

(१५) नववारिकणैर्विराजितानां
स्वनदम्भोधरवाय्ववीचितानाम्
मदनस्य कृते निकेतकानां
प्रतिभान्त्यद्य वनानि केतकानाम्

●

[आ]ज वर्षा के नये जल से धुले हुए और गरजते हुए बादलों के साथ
[ब]हे हुए पवन से हिलती लहराती हुई केतकी (केवड़े) की झाड़ियाँ ऐसी जग[ती हैं]
मानो कामदेव के लिए कुंजें बन खड़ी हुई हों ।

●

नव - नव वारि - कणों से राजित,
गर्जित मेघ-वायु से कंपित,
मदन-देव के सुठि निकेत-सा,
शोभित आज केतकी-कानन ।

●

आपने पातन-पातन पै नव वारि-कनानि को है यह धारे
गर्जित-मेघ-समीरन सों तनु कंपित होत है जात मना रे
या बरखा में सुसोभित केतकी-कानन मोहन सो बिमना रे
काम-निकेतन सो सुठि सुंदर, मंजुल मोहक आजु बना रे

●

[K]etaki shrubs are sprinkledover with fresh rain-drops;
[T]hey are trembling with winds blow,
[A]ccompanied with clouds sound deep
[T]hese shrubs appear to be the very abode of Cupid.

(१६) तत्साधु यत्त्वां सुतरुं ससर्ज
प्रजापतिः कामनिवास सर्ज
त्वं मञ्जरीभिः प्रवरो वनानां
नेत्रोत्सवश्चासि सयौवनानाम्

अरे काम के बसेरे बने हुए सर्ज (साल) के वृक्ष, ब्रह्मा ने तुम्हे इतना सुन्दर बनाकर बड़ा अच्छा किया कि इस वन मे मंजरियो से लदे हुए तुम्हे देखकर संयोगिनियो के नेत्र खिल उठते है, पर ब्रह्मा ने इतना ही बुरा किया कि वियोगिनियों को तुम फूटी आँखों नहीं सुहाते ।

काम-निवास रूप में सिरजा, सर्ज, तुम्हें जो,
सो ब्रह्मा ने किया भला ही ।
वन में नव मंजरियाँ मनहर,
तुम नयनोत्सव-से लगते हो
सुखद सँयोगी नव दंपति को ।
(पर वियोगियों को तुम हो क्यों विमन बनाते ?)

काम-निवास बनाय तुम्हैं सिरजो बिधि से जग मैं विधना रे
आछो कियो जो तुम्हैं बिरच्यो वन माहिँ मनोहर मंजरी-वारे,
नयनोत्सव से तुम सीतल लागत, साल हे, हेतु सँयोगी जना रे
(देखि तुम्हें पै वियोगी जना मुमना बनि जात अहै बिमना रे)

O beauteous *Surj* tree, Brahma, the creator, has created thee
As the very residence of Cupid.
He has done well to produce thee as such.
Thy sylvan sprays are so very fascinating,
Thou art a captivating festivity,
For the eyes of young couples.
(For farsaken ones, thou art *otherwise*.)

(१७) नवकदम्ब शिरोऽवनतास्मि ते
वसति ते मदनः कुसुमस्मिते
कुटज किं कुसुमैरुपहस्यते
तियतिकस्म्यतिदुः प्रहस्य ते

अरे नये कदंब, मैं तुम्हे सिर झुकाकर प्रणाम करती हूँ, क्योंकि तुम्हारे में कामदेव बसेरा डाले बैठा है। अरे कौरैया के वृक्ष, तू क्यों अपने के बहाने खिलखिलाकर हँसे जा रहा है। यहाँ प्राण निकले जा रहे हैं तुझे हँसना लग रहा है। अरे दुःख देने वाले, तेरे हाथ जोड़ती हूँ। नी हँसी बन्द कर)।

नव-कदंब शिरसा अवनत हूँ,
तव विकसित कुसुमों में नित ही
मदन-वास है।
अरे कुटज, तू फूलों के मिस क्यों हँसता है?
क्यों दहता है?
क्यों डसता है?

तू वियोगियों को अति दुःखद,
फिर भी तेरे सम्मुख नतशिर,
(अब भी अपनी हँसी बंद कर)।

या बरखा में कदंब कदंबित, काम के केत प्रसून तिहारे
हौं सिरसा नत हौं तव सम्मुख, (लीजै हजार प्रनाम हमारे)
फूलन के मिस क्यों तू हँसै री कुरैया, जलावत प्रान कहा रे
तु दुख देत वियोगिन को, नत तो प्रति तौऊ ये प्रान बिचारे

O refreshed Kadamb, I bow to thee,
For Cupid resides in the smile of thy flowers.
O Kutaj, why dost thou laugh at me,
By the pretext of thy flowers !
(Thy smile hurts my heart so much.)
Although thou art so unpleasant and painful to me,
(Eventhen), I bow to thee again and again.
(Please be kind enough to restrain thy smile.)

(१८) तरुवर विनतास्मि ते सदाहं
हृदय मे प्रकरोषि किं सदाहम्
तव कुसुमनिरीक्षणे पदेऽहं
विसृजेयं सहसैव नीप देहम्

●

अरे कदंब, मैं तो तुझे यौंही सदा हाथ जोड़ती रहती हूँ फिर भी तू मेरा हृदय क्यों जलाए डाल रहा है। (नहीं मानेगा तो) मैं यहीं तेरे फल पर दृष्टि जमाए ही अपने प्राण दे डालूँगी।

●

नीप, सदैव विनत तुमसे हूँ,
फिर भी दाह देह क्यों देते ?
देख तुम्हारे कुसुमों को मैं
सहसा देह त्याग दूँगी यह,
जहाँ खड़ी हूँ वहीं, तुरत ही,
(नारी-वध का पाप लगेगा
क्या न तुम्हें तब ?)

●

ए हो कदंब सदा तुमसे नत, तौहू जरावत काहे हिया रे
(दाहत हौ निनई हमकौ, निदई तुम-सों न, दिखाउ दया रे)
देखि तिहारे प्रसूनन कौं, तजिहौं यह देह तुरंत यहाँ रे
(तो सिर धाइ के आइ चढ़ैगो वधू-वध-पाप अमाप महा रे)

●

O Nip tree I have been ever humble to thee,
How is it that eventhen thou burnst my heart !
(If thou dost not forsake this habit of thine),
I shall abandon this body (and die),
While looking at thy flowers,
(And thou shalt be a sinner great.)

(१६) कुसुमैरुपशोभितां सितै
घनमुक्ताम्बुलवप्रभासितैः
मधुनः समवेक्ष्य कालतां
भ्रमरश्चुम्बति यूथिकालताम्

●

ब सखी, घनियल बादलों की कालिमा देखकर यह भौंरा वर्षा के जल-
सजी और उजले फूलों से चमचमाती जूही की झाड़ी को चूमे चला
ा है।

●

जूही की लतिका उज्ज्वल-उज्ज्वल फूलों से
लदी हुई है, और फूल वे
मेघ-मुक्त-जल-कण से भासित।
निरख श्यामता मेघमाल की, भ्रमर चूमता कैसा उनको।

●

यह वेलि सुसोभित स्वेत प्रसूनन के दल भारे सँभारे
फूल ये नीरद के जल की कनिकान ते धोए सँवारे सिँगारे
खि के पावस के घन की कजराई, बने मधु ते मतवारे
देखो अली, अलि है यह चूमत, जूही-लता, निज पंख पसारे

●

Just look my friend,

Beholding the dark tint of clouds,

The bee is kissing the Jasmine creeper,

Which is shinig with white flowers,

And is beautified with the little particles of rain showers.

(२०) तासामृतुः सफल एव हि या दिनेषु
सेन्द्रायुधाम्बुधरगर्जितदुर्दिनेषु
रत्युत्सवं प्रियतमैः सह मानयन्ति
मेघागमे प्रियसखीश्च समानयन्ति

●

हृद
जम

इंद्रधनुष के साथ गरजते हुए बादलों वाले वर्षा के दिन तो उन्हीं के लिए सफल है, जो दिन मे भी अपने प्रिय के साथ लिपटी पड़ी रहती हैं और अपनी सखियों को भी साथ लगाए रहती है।

●

उनकी ही वर्षा ऋतु सफला,
इंद्रधनुष-युत-गर्जित-घन-मय-
दुर्दिन के दिन में जो पति सँग,
रति उत्सव मे रत रहती हैं;
औ अपनी प्रिय सखियों को भी
वैसा दिवसानंद मनाने को प्रेरित करती रहती हैं

●

इंद्र कौ आयुध लै संग मै, घन गर्जत बर्षत है जब कारे
दुर्दिन में, दिन में जो करै रति, पीतम संग लै, भीति बिना रे
औ अपनी सखियान कौ प्रेरत, तौहूँ अनंद करौ दिन माँ रे
है बरखा उनही को फली, (भली बात बनी घन के अँधियारे)

●

The rains are fruitful only to those
Who enjoy the festivity of embracing their loves,
Even in the day, when enwrapped with rainbow,
The dark clouds thunder,
And who whisper in the ears of their maids
To act and behave likewise.

(२१) एतन्निशम्य विरहानलपीडितायाः—
स्तस्या वचः खलु दयालुप्पीडितायाः
सोत्कण्ठमेवमुदितो जलदैरमोघैः
प्रत्याययौ स गृहमूनदिनैरमोघैः

●

विरह से पीड़ित होने पर भी, जिसकी (निष्ठा के कारण) संसार में बड़ी ा हो रही है, उस अपनी प्यारी के संदेश की बातें बादलों से सुनकर ा अत्यंत सहृदय प्रवासी पति बड़ी उतावली के साथ अपने घर लौट ा।

●

इस प्रकार विरहानल पीड़ित की दुख-गाथा
औ अपनी पतिव्रता प्रिया की परम प्रशंसा
सुनी बादलों के मुख से उस प्रोषित पति ने।
उसका हृदय उदार हो उठा, द्रवित हो उठा।
जलदों की वाणी अमोघ थी!
उत्कंठित हो, कुछ ही दिन में,
वह अपने घर को झट लौटा।
(दोनों के गत दिन फिर लौटे)।

●

विरहानल पीडिता के दुख के बदरान ने बैन अमोघ उचारे
सो सुनि जानि पतिव्रता तीय को, पीय के हीय में आई मया रे
ह्वै उतकंठित पीय चल्यो, अपने घर, थोरे दिना में पधारे
(दोऊ दुखारी सुखारी भये, दिन लौटे, भए अँधियारे उजारे)।

●

Having the message, from the thunder's of clouds,
Of his beloved wife, who though agonised
By the pangs of separation,
Remained chaste and faithful to him.
And was thereby praised allover,
Her greatly sincere and compassionate hus

[illegible]

(२०) तासामृतुः सफल एव हि या दिनेषु
सेन्द्रायुधाम्बुधरगर्जितदुर्दिनेषु
रत्युत्सवं प्रियतमै सह मानयन्ति
मेघागमे प्रियसखीश्च समानयन्ति

●

इंद्रधनुष के साथ गरजते हुए बादलों वाले वर्षा के दिन तो उन्ही के लिए सफल है, जो दिन में भी अपने प्रिय के साथ लिपटी पडी रहती है और अपनी सखियो को भी साथ लगाए रहती हैं।

●

उनकी ही वर्षा ऋतु सफला,
इंद्रधनुष-युत-गर्जित-घन-मय-
दुर्दिन के दिन में जो पति संग,
रति उत्सव मे रत रहती हैं;
औ अपनी प्रिय सखियों को भी
वैसा दिवसानंद मनाने को प्रेरित करती रहती है

●

इंद्र को आयुध लै संग मैं, घन गर्जत वर्षत है जब कारे
दुर्दिन में, दिन में जो करैं रति, पीतम संग लैं, भीति बिना रे
औ अपनी सखियान कौं प्रेरत, तौहूँ अनंद करौ दिन माँ रे
है बरखा उनही को फली, (भली बात बनी घन के अँधियारे)

●

The rains are fruitful only to those
Who enjoy the festivity of embracing their loves,
Even in the day, when enwrapped with rainbow,
The dark clouds thunder,
And who whisper in the ears of their maids
To act and behave likewise.

(२१) एतन्निशम्य विरहानलपीडिताया—
स्तस्या वचः खलु दयालुष्पीडितायाः
सोत्कण्ठमेवमुदितो जलदैरमोघैः
प्रत्याययौ स गृहमुनदिनैरमोघैः

●

विरह से पीड़ित होने पर भी, जिसकी (निष्ठा के कारण) संसार में बड़ी
ा हो रही है, उस अपनी प्यारी के संदेश की बातें बादलों से सुनकर
ा अत्यंत सहृदय प्रवासी पति बड़ी उतावली के साथ अपने घर लौट
ा।

●

इस प्रकार विरहानल पीड़ित की दुख-गाथा
औ अपनी पतिव्रता प्रिया की परम प्रशंसा
सुनी बादलों के मुख से उस प्रोषित पति ने।
उसका हृदय उदार हो उठा, द्रवित हो उठा।
जलदों की वाणी अमोघ थी!
उत्कंठित हो, कुछ ही दिन में,
वह अपने घर को झट लौटा।
(दोनों के गत दिन फिर लौटे)।

●

विरहानल पीडिता के दुख के बदरान ने बैन अमोघ उचारे
सो सुनि जानि पतिव्रता तीय को, पीय के हीय में आई मया रे
ह्वै उतकंठित पीय चल्यो, अपने घर, थोरे दिना में पधारे
(दोऊ दुखारी सुखारी भये, दिन लौटे, भए अँधियारे उजारे)।

●

Having the message, from the thunder's of clouds,
Of his beloved wife, who though *agonised*
By the pangs of separation,
Remained chaste and faithful to him.
And was thereby praised allover,
Her greatly sincere and *compassionate* husband,
Hastened back home *immediately*.

(२२) भावानुरक्तवनितासुरतैः शपेय—
मालभ्य चाम्बु तृषितः करकोशपेयम्
जीयेय येन कविना यमकैः परेण
तस्मै वहेयमुदकं घटखर्परेण

●

स्वयं प्यासा होने पर भी, मैं हाथ में जल लेकर अपनी प्यारी कामिनियों के साथ की जाने वाली रति के भेदों की सौगंध खाता हूं कि यमक के प्रयोग में यदि कोई कवि मुझे हरा दे, तो मै घड़े के ठीकरे मे उसे अंजलि भर जल भर पिलाऊँ।

●

मैं प्यासा हूँ, पीने को अंजलि में जल है,
फिर भी यदि कोई कवि मुझको
यमकों की रचना में कर दे आज पराजित
तो अंजलि-गत-जल न पिऊँ,
उस जल से ही सकल्प करूँ मैं
अपनी अनुरक्ता-वनिता-रति की शपथें सौ खाऊँ
उस विजयी कवि के घर पानी स्वयं भरूँगा
घटखर्पर से, यमको की रचना में पटु मैं कवि अभियानी

●

कोऊ अपार उदार महाकवि जो यमकानि मे मोहिं पछारे
प्यासो जऊ, न पिऔं अँजुरी-जल, वासों करौं हौं संकल्प महा रे
रत्त प्रिया सों करौं रति नाहिं, कहौं यह सौंह हजारन खा रे
वा विजयी घर पानी भरौं, घटखर्पर सों, सब मान बिसारे

●

Although I myself am thirsty,
And water is in my hands,
Yet I will not quench my thirst with it,
On the other hand, I resolve with this very water,
That I shall abstain from the pleasure to be had
In the company of my lady love,
And promise to carry water in broken pitcher
To that poet, who defeats me in composition of Yamak's.

—o—